बुद्धवर्ष २५४४, श्रावण पूर्णिमा, १५ अगस्त, २००० वर्ष ३० अंक २

धम्मवाणी

यदा हवे पातुभवन्ति धम्मा, आतापिनो झायतो ब्राह्मणस्स।
अथस्स कङ्खा वपयन्ति सब्बा, यतो पजानाति सहेतुधम्मं॥
अथस्स कङ्खा वपयन्ति सब्बा, यतो खयं पच्चयानं अवेदी।
विधूपयं तिट्ठति मारसेनं, सुरियोव ओभासयमन्तलिक्खं॥

जब किसी ब्राह्मण(तापस) को ध्यान करते हुए (बोधिपक्षीय) धर्म प्रकट होते हैं तब उसकी सारी शंकाएं दूर हो जाती हैं, क्योंकि वह सभी उत्पन्न होने वाली स्थितियों का कारण जान लेता है। उसकी सारी शंकाएं दूर हो जाती हैं, क्योंकि वह उन कारणों का नष्ट होना भी जान लेता है। (और इस प्रकार कारणों को नष्ट करके)(प्रबल) मार सेना को पराजित करता हुआ (पूर्ण विमुक्त अवस्था में) वैसे ही प्रतिष्ठित हो जाता है जैसे कि समस्त अंधकार को परास्त करके सूर्य अंतरिक्ष में प्रतिष्ठित होता है।

[धारण करे तो धर्म]

स्वानुभूति क्यों आवश्यक है?

(जी-टीवी पर क्रमशः चौवालीस कड़ियों में प्रसारित पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों की **पंद्रहवीं कड़ी**)

बुद्धि से समझे हुए ज्ञान में और अनुभूति से जाने हुए ज्ञान में बहुत बड़ा अंतर है। यह अंतर वही समझ सकता है जिसने दोनों को जान लिया। एक बात बुद्धि के स्तर पर समझी और वही बात अनुभूति के स्तर पर भी समझी, तब दोनों का अंतर बहुत स्पष्ट हो गया। अंतर को अनुभूति द्वारा जानने के लिए एक विशेष प्रकार की शक्ति की आवश्यकता है, वह है **प्रज्ञा** की शक्ति। इस प्रकृति ने, इस निसर्ग ने या यों कहें, इस परमात्मा ने मनुष्य को वह शक्ति दी है। हम उस शक्ति को जगाना न जाने, उसका उपयोग करना न जाने तो यह हमारी गलती है, हमारी कमजोरी है, हमारी कमी है। जैसे कुदरत ने हमें आंख से देखने की शक्ति दी, कान से सुनने की शक्ति दी, नाक से सूंघने की शक्ति दी, जीभ से चखने की शक्ति दी, शरीर की त्वचा से स्पर्श करने की शक्ति दी, मन से चिंतन करने की शक्ति दी; वैसे ही यह प्रज्ञा की शक्ति है। यह जागे तो अपना काम विशेष रूप से करना शुरू कर दे। जो काम आंख नहीं कर सकती, कान नहीं कर सकते, नाक नहीं कर सकती, जीभ नहीं कर सकती, त्वचा नहीं कर सकती, मन भी नहीं कर सकता, उसके परे उन गहराइयों में प्रज्ञा जागती है। उसे जगाना होता है। उसको जगाने की भी अपनी एक कला होती है। वह न जागे तो अनुभव कैसे हो?

सुन लिया, बुद्धि से समझ कर स्वीकार भी कर लिया कि यह सारा शरीर-स्कंध केवल नन्हें-नन्हें बुदबुदे हैं, नन्हीं-नन्हीं लहरियां हैं। इसमें कहीं ठोसपना नहीं है। अब किसी को कह दें कि बैठ जाओ, आंख बंद करो और इसको अनुभव करो। क्या अनुभव करेगा बेचारा? कल्पना ही करेगा, यह मेरा सारा शरीर परमाणुओं से बना हुआ है, यह मेरा सारा शरीर नन्हीं-नन्हीं तरंगों से बना हुआ है, यह मेरा सारा शरीर बुदबुदों से बना हुआ है। कल्पना करता जाय तो हो सकता है वह साकार भी हो जाय। पर सत्य की अनुभूति कहां हुई? कल्पना के सहारे काम करेंगे तो कल्पना के सहारे बढ़ते-बढ़ते किसी बड़ी कल्पना में उलझ कर रह जायेंगे और सत्य के सहारे काम करेंगे, माने अनुभूति के सहारे काम करेंगे, प्रज्ञा के बल पर काम करेंगे तो सत्य के सहारे अनुभूति के बल पर बढ़ते-बढ़ते उससे सूक्ष्म सत्य, उससे सूक्ष्म सत्य, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम और उससे आगे परम सत्य तक जा पहुँचेंगे। प्रज्ञा बड़ी बलवान होती है, बड़ी कल्याणकारी होती है, पर जागनी चाहिए। प्रज्ञा नहीं जागे, अनुभूति वाला ज्ञान नहीं जागे तो अध्यात्म में जो लाभ होना चाहिए, उससे वंचित रह गये।

एक उदाहरण से समझें, किसी आदमी के पास देखने की शक्ति नहीं है। वह जन्म से अंधा है। उसके आंख ही नहीं है, क्या देखे? अपने यहां एक कहानी चलती है –दो लड़के बड़े गरीब, बड़े गरीब। वे फुटपाथ पर सो करके और भीख मांग करके अपना जीवन बितायें। उनमें से एक जन्म का अंधा। दूसरा उसका हाथ पकड़ कर साथ ले जाये और भीख मांग करके दोनों अपना पेट-गुजारा करें। एक दिन ऐसा हुआ कि जो अंधा मित्र था उसे बहुत तेज बुखार हो गया। उसके मित्र ने कहा, तू यहीं लेटा रह भाई! तू मेरे साथ भीख मांगने के लिए जाने लायक नहीं है। मैं जाता हूं, तेरे लिए भी भीख ले आऊंगा और यहीं बैठ कर खा लेंगे। वह गया और संयोग ऐसा हुआ कि किसी गृहिणी ने उसे खीर दे दी। बड़ा खुश हुआ। पर बेचारे के पास कोई पात्र तो था नहीं। अपनी हथेली में लेकर पी गया। वापस आया तो अपने मित्र से कहता है, क्या करूं भाई, आज तो भीख में खाने के लिए बहुत बढ़िया खीर मिली। लेकिन मेरे पास कोई पात्र तो था नहीं, तेरे लिए कैसे लाता? अंधे मित्र ने कहा, अच्छा भाई, नहीं लाया तो नहीं लाया। उस बेचारे ने कभी खीर खायी ही नहीं थी, तो पूछता है, खीर क्या होती है, यह तो बता?

– अरे, तुझे नहीं मालूम खीर कैसी होती है?

– मैंने तो कभी नहीं खायी भाई, कैसी होती है तू ही बता?

– सफेद-सफेद होती है।

– सफेद-सफेद! अरे, सफेद क्या होता है?

वह तो जन्म का अंधा, उसे क्या पता सफेद क्या होता है।

–अरे, तुझे सफेद नहीं मालूम, जो काला नहीं होता, वह सफेद होता है।

– काला क्या होता है भाई? यह क्या कह दिया तूने?

जन्म का अंधा है। न उसे काले का पता, न सफेद का। अब कैसे समझाये? तो पास कोई सफेद बगुला खड़ा था उसे पकड़ लाया, कि अब तो समझ, खीर इस बगुले की तरह सफेद होती है।

कैसे समझे बेचारा? आंख तो है नहीं। हाथ से टटोल-टटोल कर देखा और बड़ा खुश हुआ, अब समझ गया, सफेद क्या होता है। सफेद बड़ा मुलायम-मुलायम होता है। ओ, तेरी खीर बड़ी मुलायम-मुलायम थी।

–अरे बावले, सफेद का मुलायमपने से कि खुरदरेपने से क्या लेनदेन? सफेद, सफेद होता है।

–अरे बाबा, मैं क्या जानूं? तूने कहा यह पक्षी के जैसा है। मैंने हाथ लगा कर देखा। वह तो बड़ा मुलायम है। तो मुलायम ही हुआ ना सफेद?

–अरे नहीं रे, मुलायम नहीं होता। इस बगुले की तरह सफेद होता है। तू जरा समझ तो सही?

क्या करे बेचारा? फिर टटोल-टटोल कर देखता है। उसकी चोंच से शुरू करता है और सारे शरीर पर हाथ फेर कर कहता है, अब समझ गया।

– क्या समझ गया?

– अरे, टेढ़ा होता है सफेद। तेरी खीर टेढ़ी है।

तब से मुहावरा चल पड़ा कि 'खीर टेढ़ी है'। कैसे समझे? देखने की जो शक्ति निसर्ग सबको देती है, वह उसके पास है नहीं। कैसे समझे? कोई जन्म का बहरा हो, उसके लिए शब्द क्या होता है, आवाज क्या होती है, कैसे समझे? ठीक इसी प्रकार यदि प्रज्ञा हमारे पास नहीं है, तो कैसे समझें, कैसे जानें कि भीतर की सच्चाई क्या है? कैसे जानें कि यह सारा का सारा शरीर परमाणुओं से बना हुआ है, बुदबुदों से बना हुआ है, लहरियों से बना हुआ है। उत्पन्न होता है, नष्ट होता है, उत्पन्न होता है, नष्ट होता है। बुद्धि से कल्पना भले कर ले। बुद्धि से भले समझ ले, पर अनुभूति की बात तो नहीं हुई ना! क्योंकि वह शक्ति ही नहीं जगायी। वह शक्ति जागे। भारत की यह पुरातन विद्या इसी काम के लिए हुआ करती थी। स्वानुभूति पर उतरे वह वेद। अनुभूति वाले इसी ज्ञान को वेद-ज्ञान कहते थे। दर्शन माने अनुभूति। अनुभूति वाले ज्ञान को दर्शन-ज्ञान भी कहते थे। 'पश्यना' माने अनुभूति। पश्यना वाले ज्ञान को ही कहते थे – **'पस्स जान, पस्स जान'**। यह भारत की बहुत पुरातन विद्या थी जिसे किसी कारणवश भूल गये। खैर, फिर आयी है।

मुख्य बात अपने बारे में जो सच्चाई है उसको अनुभूति पर कैसे उतारें? अरे, बाहर-बाहर की जो सच्चाई है उसको भी हम पूरी तरह नहीं समझ सकते। आंखों में देखने की जो शक्ति है उसकी एक सीमा है। उस सीमा के बाहर कोई घटना घट रही है तो आंख उसे नहीं देख सकती।

एक उदाहरण से समझें। जब आंख देख नहीं सकती तो कितनी भ्रांतियां पैदा होती हैं, इसे देखें। रात को एक मोमबत्ती या दीपक जला कर सो गया। सुबह उठा तो देखता है वही मोमबत्ती जल रही है, वही दीपक जल रहा है, वही रोशनी है। अरे, कहां वह मोमबत्ती, कहां वह दीपक? उसमें से प्रतिक्षण एक लौ उठती है, नष्ट हो जाती है, दूसरी उसका स्थान लेती है। एक उत्पन्न होती है, नष्ट होती है, उत्पन्न होती है, नष्ट होती है। एक लौ और दूसरी लौ के बीच में कोई अंतराल नहीं है। एक के बाद एक, एक के बाद एक घटना घटती चली जा रही है और हमें लगता है कि वही है, वही है, वही है।

कोई बिजली का बल्ब हो और मैं उसकी ओर दो बार अंगुली करूं तो बाहर-बाहर से यों लगेगा कि बिजली के बल्ब का वही प्रकाश है। अरे, कहां वह प्रकाश है भाई? अगर वही प्रकाश होता तो यह महीने के अंत में इलेक्ट्रिक कंपनी वाले हमको काहे का बिल भेजते? क्योंकि वे वहां बिजली जनरेट कर रहे हैं और वह तार के सहारे-सहारे यहां आती है नष्ट होती है, दूसरी आती है नष्ट होती है। एक के बाद एक इतनी शीघ्र गति से आ-आ कर नष्ट होती है कि हमें लगता है वही है, वही है। अरे, वह नहीं है। कैसे जाने इसे? क्योंकि आंख की अपनी एक सीमा है।

एक और उदाहरण से समझें। एक आदमी सुबह नदी पार कर के उस तट पर जाता है। दिन भर अपना काम धंधा कर के फिर नाव से वापस आ जाता है। वह यही समझता है, जो गंगा मैंने सुबह पार की थी, वही गंगा शाम को पार कर के आ गया। अरे, कहां वह गंगा? सुबह वाली गंगा तो कहीं गयी। यह तो बिल्कुल दूसरी गंगा है। उस गंगा में डुबकी लगा कर देखे। एक डुबकी लगायी, सिर ऊपर किया, फिर एक डुबकी लगायी, सिर ऊपर किया। फिर एक डुबकी लगायी, सिर ऊपर किया। भ्रम यही है कि मैं उसी गंगा में डुबकी लगा रहा हूं। उसी गंगा में डुबकी लगा रहा हूं। अरे, कहां वह गंगा भाई? तूने जिस गंगा में पहली डुबकी लगायी, वह तो सारी बह गयी। उसकी एक बूंद नहीं बची। एक कतरा नहीं बचा। दूसरी डुबकी दूसरी गंगा में लगी। तीसरी डुबकी तीसरी गंगा में लगी।

जब कोई बात बड़ी शीघ्रता के साथ होती है और आंखों से देख नहीं पाते तो बड़ी भ्रांति पैदा होती है। बड़े ध्यान से देखे और अपनी सीमा के भीतर है तो समझ भी जाय। उस दीपक की लौ को बड़े ध्यान से देखे तो दिखती है कि एक लौ उठी, खत्म हुई, एक लौ उठी, खत्म हुई। लेकिन इस इलेक्ट्रिक बल्ब की रोशनी को कितने भी ध्यान से देखे, हमारी आंख की शक्ति-सीमा के बाहर है, अतः कुछ नहीं मालूम होगा कि कुछ उत्पन्न हो रहा है, नष्ट हो रहा है। उत्पन्न हो रहा है, नष्ट हो रहा है। नहीं मालूम होगा।

नदी के बहाव को ध्यान से देखे तो वह हमारी आंख की शक्ति-सीमा के भीतर है। हम देख पाएंगे कि जो पहली डुबकी लगी, देख! वह पानी बह गया ना! दूसरी डुबकी दूसरे पानी में लगी, वह भी बह गया! तीसरी डुबकी लगी, वह पानी भी बह गया। तो भाई, ठीक है बहता जा रहा है। अगली डुबकी नई गंगा में लगी, अगली डुबकी नई गंगा में लगी, खूब समझ में आया। लेकिन यह कैसे समझ में आये कि जिस व्यक्ति ने पहली डुबकी लगायी, वह भी बह गया। दूसरी डुबकी किसी दूसरे व्यक्ति ने ही लगायी। तीसरी डुबकी किसी तीसरे व्यक्ति ने ही लगायी। कैसे समझेगा? आंख की शक्ति-सीमा के बाहर की बात है।

यह गोयन्का, इसने कभी विपश्यना न की हो तो क्या हालत हो? अरे, दस मिनट पहले जो बोलने बैठा वही गोयन्का हूं ना? अरे, जो घंटे भर पहले था, वही तो गोयन्का हूं ना? कल जो गोयन्का था, वही तो हूं ना? दस वर्ष पहले जो गोयन्का था, वही तो हूं ना? बीस, तीस, पचास, सत्तर वर्ष पहले जो गोयन्का था, अरे, वही तो गोयन्का हूं ना? अरे, कहां वह गोयन्का है भाई? अंदर देखना आ जाय, अनुभव करना आ जाय तो इस एक क्षण में, या चुटकी बजायें इतनी देर में न जाने कितनी बार यह गोयन्का मर गया और फिर जन्म हो गया। मर गया और फिर जन्म हो गया। नष्ट हुए जा रहा है, नया बने जा रहा है। नष्ट हुए जा रहा है, नया बने जा रहा है।

कैसे समझे? इस सच्चाई को बुद्धि के स्तर पर समझने की

कोशिश भी करे तो क्या लाभ हो? इसी को जब प्रज्ञा के स्तर पर देखता है – अरे, क्षण-प्रतिक्षण, क्षण-प्रतिक्षण इस शीघ्र गति के साथ परिवर्तन हुए जा रहे हैं, परिवर्तन हुए जा रहे हैं। तो जो ज्ञान जागता है वह श्मसान-ज्ञान नहीं होगा। कितना भंगुर है रे! यह सारा शरीर-स्कंध कितना भंगुर है रे! कितना नश्वर है रे! कितना अनित्य है रे! कितना परिवर्तनशील है रे! बदलते ही रहता है, बदलते ही रहता है। प्रतिक्षण बदलता है, प्रतिक्षण बदलता है। अब यह कल्पनाओं की बात नहीं, केवल बुद्धि-विलास की बात नहीं। अब अनुभूति की बात होने लगी और अनुभूति भी कहां हो रही है! प्रज्ञा ने बींधते-बींधते उस अवस्था पर पहुँचा दिया जहां पर इस भौतिक जगत की, इस भौतिक शरीर की सूक्ष्मतम अवस्थाएं प्रकट हो रही हैं। उत्पन्न होती हैं, नष्ट होती हैं। उत्पन्न होती हैं, नष्ट होती हैं। सारा शरीर-स्कंध परमाणुओं का पुंज, बुदबुदों का पुंज, तरंगों का पुंज। इतनी शीघ्र गति से उत्पन्न और नष्ट होनेवाला। सारा चित्त-स्कंध भी प्रतिक्षण तरंगें ही तरंगें, तरंगें ही तरंगें। यह बात अनुभूति पर उतरने लगी। **"सब्बो पज्जलितो लोको, सब्बो लोको पकम्पितो, पकम्पितो, पकम्पितो।"** जैसे भीतर वैसे बाहर। संत ने भीतर देख लिया, तब कहता है कि –

बाहर भीतर एको सच है, यह गुरुज्ञान बताई रे।
जन नानक बिन आपा चीन्हे, कटे न भ्रम की काई रे॥

'जन नानक', जान गया है नानक। केवल शास्त्रों को पढ़ कर बात नहीं कर रहा। केवल प्रवचनों को सुन कर बात नहीं कर रहा। केवल बुद्धि-विलास करके बात नहीं कर रहा। अनुभूतियों से जान गया तो लोगों से भी कहता है, जानो भाई! केवल मान कर क्या होगा? जानो। नहीं जानोगे तो सारा जीवन भ्रांति में बीत जायगा। कितनी भ्रांति? कितना भ्रम? बेहोशी ही बेहोशी, अज्ञान ही अज्ञान, अविद्या ही अविद्या। कैसा जीवन बीत रहा है। दुःखों से भरा हुआ, तनावों से भरा हुआ, राग से भरा हुआ, द्वेष से भरा हुआ। निर्मलता का नामो-निशान नहीं। यह थोड़ी देर के लिए ऊपर-ऊपर की निर्मलता आती है, बड़ा खुश होता है। मैं निर्मल व्यक्ति, मैं बड़ा धार्मिक व्यक्ति। अरे, भीतर तूने अंगारे भर रखे हैं। जल रहा है, राग से जल रहा है, द्वेष से जल रहा है। कर क्या रहा है? होश नहीं जागता। भीतर देखना ही नहीं आया तो कैसे होश जागेगा? भ्रांति ही भ्रांति। किस कदर बाहर भीतर प्रतिक्षण परिवर्तन हो रहा है। एक क्षण ऐसा नहीं जिसमें कोई परिवर्तन न हो। प्रतिक्षण परिवर्तन होता है – उदय हुआ, नष्ट हुआ, परिवर्तित होकर फिर उदय हुआ। प्रतिक्षण परिवर्तन ही परिवर्तन।

एक नन्हें से बच्चे को देखा। कितना सुंदर, कितना कोमल। दस वर्ष बाद उस बच्चे को देखूं। अरे, कितना बदल गया? यह वही बच्चा है? कैसे बदल गया? बीस बरस बाद, तीस बरस बाद, चालीस, पचास, साठ, सत्तर, अस्सी बरस बाद उसको देखूं। विश्वास ही न हो। अरे, यह वही बच्चा है? कैसा हो गया? ऐसी कोमल चिकनी-चिक नीत्वचा थी उसकी और अब यह रूखी-सूखी झुर्रियों वाली हो गयी? क्या हो गया इसे भाई, कैसे हो गया और कब हो गया? हर दस-दस बरस बाद रात को चादर तान कर सोया और किसी ब्रह्मा ने, किसी अल्लाह मियां ने उस पर ऐसा जादू का डंडा फेरा कि एकदम बदल गया। ऐसा तो नहीं होता ना? प्रतिक्षण बदलता है, प्रतिक्षण बदलता है। यह बात केवल बुद्धि से स्वीकार करके रह जाएंगे, तो कुछ मिला-मिलाया नहीं। या बड़ी श्रद्धा से स्वीकार करके रह गये, तब भी कुछ मिला-मिलाया नहीं। यही बात जब अनुभूति पर उतरती है, तब भीतर का होश जागता है। प्रज्ञा का पहला स्वरूप यही है कि अनित्य-बोध जागता है। इसी को कहते हैं, **'अनित्य-बोधिनी प्रज्ञा जागती है।'** यह सारा शरीर-स्कंध यह सारा चित्त-स्कंध किस कदर बदल रहा है। कितना भंगुर है। अब जन्म लेता है और पचास वर्ष बाद, कि अस्सी बर्स बाद, कि सौ बर्स बाद मरता है, इस माने में ही भंगुर नहीं है बल्कि प्रतिक्षण भंग होता है, प्रतिक्षण भंग होता है, इस माने में क्षण-भंगुर, क्षण-भंगुर, क्षण-भंगुर। हर क्षण भंग हुए जा रहा है, हर क्षण भंग हुए जा रहा है। यह अनुभूति पर उतरे। अनुभूति पर उतारने के लिए प्रकृति ने, कुदरत ने या परमात्मा ने हमें जो इतनी बड़ी शक्ति दी है, उसका उपयोग करें ना! अपने भीतर की प्रज्ञा जगायें। श्रुत प्रज्ञा चिंतन प्रज्ञा में बदले, चिंतन प्रज्ञा भावनामयी प्रज्ञा में बदले। अनुभूतियों के स्तर पर यह अनित्य बोध जागे। अरे, यह सारा शरीर-स्कंध जिसे "मैं, मैं" किये जा रहा हूं। जिसे "मेरा मेरा" किये जा रहा हूं, कितनी देहात्म बुद्धि है! इस देह के प्रति, इस काया के प्रति कितना बड़ा तादात्म्य – 'मैं, मेरा', 'मैं, मेरा'। यह चित्तात्म बुद्धि, इस चित्त के प्रति 'मैं, मेरा', 'मैं, मेरा'। ऊपर-ऊपर से हजार कहता रहे, यह 'मैं' नहीं, यह 'मेरा' नहीं। भीतर जाता है, भीतर की यात्रा करता है अंदर के अंतरिक्ष की यात्रा करता है तो देखता है, अरे, यह 'मैं' ही हो गया ना! यह 'मेरा' ही हो गया ना! वस्तुतः तो ऐसी हालत बना ली कि यह शरीर ही 'मैं' है, 'मेरा' है। यह चित्त ही 'मैं' है, 'मेरा' है। इन दोनों की मिली-जुली जीवन-धारा, 'मैं' है, 'मेरी' है। अरे, कैसी देहात्म बुद्धि!

यह जो देहात्म बुद्धि है, इसी मारे राग जगाता है। इसी मारे द्वेष जगाता है। इसी मारे मोह जगाता है। इसी मारे भिन्न-भिन्न प्रकार के विकार जगाता है और व्याकुल हुए जाता है, व्याकुल हुए जाता है। बुद्धि से समझ भी ले कि अरे, यह देह 'मैं' नहीं है! यह देह 'मेरा' नहीं है! तो भी देहात्म बुद्धि नहीं निकलती। अनुभूति की बात नहीं होने के कारण बार-बार इस काया को 'मैं' मान करके चलेगा, 'मेरी' मान करके चलेगा और व्याकुल ही व्याकुल, व्याकुल ही व्याकुल। इस चित्त को मैं मान करके चलेगा, इस चित्त को मेरा मान करके चलेगा और व्याकुल ही व्याकुल, व्याकुल ही व्याकुल। क्योंकि बात अनुभूति पर नहीं उतरी ना! प्रज्ञा द्वारा नहीं जाना ना! यह तो केवल बुद्धि की बात रह गयी, श्रद्धा की बात रह गयी। श्रद्धा के स्तर पर एक बात को स्वीकार कर लेना, बुद्धि के स्तर पर एक बात को मान लेना अलग बात है। ऊपरी-ऊपरी मानस पर उसका अपना बड़ा अच्छा असर होता है पर कोई स्थाई असर नहीं होता। चला जाता है। लेकिन अंतर्मन की गहराइयों में जाकर के इस सच्चाई को जब अनुभूति पर उतारता है, अनित्य-बोधिनी प्रज्ञा जागती है तब समझता है सचमुच अनित्य है, अनित्य है।

तब इस सारे अनित्य क्षेत्र के प्रति जो पागलपन है, जो चिपकाव है, जो आसक्ति है, वह सहजभाव से टूटने लगती है। अंदर देखते-देखते ऐसी अवस्थाएं आती हैं जो कि बड़ी प्रिय लगती हैं। तब पुरानी आदत के अनुसार उनके प्रति राग पैदा करता है अथवा कभी कुछ बड़ा अप्रिय लगता है तो पुरानी आदत के अनुसार उसके प्रति द्वेष पैदा करता है। राग पैदा करता है, द्वेष पैदा करता है – यह तो मानस का पुराना स्वभाव था और क्योंकि अभी उस स्वभाव के शिकंजे में जकड़ा हुआ है तो साधना में भी वही करता है। फिर होश आता है, अरे, किसके प्रति राग पैदा कर रहा हूं? जिसके प्रति राग कर रहा है, वह शरीर-स्कंध, वह चित्त-स्कंध प्रतिक्षण बदल रहा है, बदल रहा है। अभी जो प्रिय लग रहा है, आगे जाकर अप्रिय भी हो सकता है। अभी जो अप्रिय लग रहा है, वही आगे जाकर प्रिय भी हो सकता है। कैसा परिवर्तनशील है! प्रतिक्षण बदलता है, प्रतिक्षण बदलता है।

अरे भाई, इन प्रवचनों से यह बात स्वीकार भले कर लें, पुस्तकें पढ़ करके यह बात स्वीकार भले कर लें, परंतु अनुभव के बिना जानेंगे नहीं। जानेंगे नहीं तो ज्ञान पराया ही पराया है, अपना नहीं है और

अपना ज्ञान जागे बिना विकारों से विमुक्त नहीं हो सकता। इसलिए अपने भीतर की प्रज्ञा जागे, अनुभूति वाली प्रज्ञा जागे तो बड़ा कल्याण होता है। शील का आधार हो, समाधि का बल हो और प्रज्ञा जागनी शुरू हो जाय। प्रज्ञा जागनी शुरू हो जाय तो भीतर का सारा प्रपंच समझ में आने लगे और बड़ा कल्याण हो, बड़ा मंगल हो। जो-जो अपने भीतर की अनुभूति वाली प्रज्ञा जगाये, उसका मंगल ही मंगल, कल्याण ही कल्याण, स्वस्ति ही स्वस्ति, मुक्ति ही मुक्ति।

पूज्य गुरुदेव की धर्मयात्रा

पूज्य गुरुदेव के ११ से १५ अगस्त तक इंगलैंड और १६ अगस्त से ७ सित. तक अमेरिका की **'विश्व शांति समिति** के अतिरिक्त विपश्यना केंद्रों व अन्य स्थानों पर होने वाले प्रवचनों आदि का विवरण निम्न वेबसाइटों पर उपलब्ध है। www.vri.dhamma.org, www.dhamma.org और –

१९-२६ सितंबर हैदराबाद, २७ से २९ सित. बैंगलोर, ३० सित. से २ अक्टूबर चेन्नई (मद्रास) तथा ३ से ८ अक्टूबर तक वे नागपुर विपश्यना केंद्र पर जायेंगे, जहां उनके अनेक कार्यक्रम निश्चित हुए हैं। विस्तृत विवरण के लिए कृपया उपरोक्त विपश्यना केंद्रों के स्थानीय संपर्क-पतों से संपर्क करें ।

जी-टीवी पर पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों की शृंखला

हर सोमवार की प्रातः ७ से ७:३० बजे तक जी-टीवी पर पूज्य गुरुदेव के प्रवचन चौवालीस कड़ियों में क्रमशः प्रसारित हो रहे हैं। साधक अपने मित्र-परिचितों को इसे सुनने के लिए प्रेरित कर सकते हैं।

धम्मतपोवन का उद्घाटन

२६ जुलाई को धम्मगिरि के समीप दीर्घ शिविरों के लिए नवनिर्मित ध्यान केंद्र 'धम्मतपोवन' का उद्घाटन पुराने साधकों के लिए **दस दिवसीय** शिविर लगाकर किया गया, जिसमें ३६ साधकों ने भाग लिया। इसमें ६० साधकों के लिए एकाकी निवास-स्थान, लगभग २५० के लिए ध्यान-कक्ष और भोजनालय तथा लगभग ७० ध्यान-गुफाएं तैयार हो गयी हैं। अगले चरण में इनका विस्तार होगा।

दोहे धर्म के

धर्म न मंदिर में मिले, धर्म न हाट बिकाय।
धर्म न ग्रंथों में मिले, जो धारे सो पाय॥
मत करमत करबावला, मत करवाद-विवाद।
खाल बाल की खींच मत, चाख धर्म का स्वाद॥
जाने समझे धर्म को, पर न करे व्यवहार।
वृथा बोझ ढोता फिरे, कैसा मूढ़ गँवार॥
धर्म धार निर्मल बने, राजा हो या रंक।
रोग शोक चिंता मिटे, निर्भय होय निशंक॥
शुद्ध धर्म धारण करे, करे दूर अभिमान।
मिले अमित संतोष सुख, धर्म सुखों की खान॥
शुद्ध धर्म पालन करे, प्रज्ञा जगे विशुद्ध।
नीर क्षीर के भेद का, रहे विवेक प्रबुद्ध॥

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास
• महालक्ष्मी मंदिर लेन, ८ महालक्ष्मी चैंबर्स, २२ वार्डन रोड, मुंबई-४०००२६.
- ४९२३५२६, • सनस प्लाजा, शॉप ११-१३, १३०२, सुभाष नगर, पुणे-४११००२.
-४८६१९०, • दिल्ली- २९११९८५, • पटना- ६७१४४२, • वाराणसी- ३५२३३१,
• बैंगलोर- २२१५३८९, • चेन्नई- ४९८२३१५, • कलकत्ता २४३४८७४
की मंगल कामनाओंसहित

दूहा धरम रा

पोथी पानां बांच कर, पंडित हुयो न कोय।
जो ई छण नै जाणग्यो, साचो पंडित सोय॥
बाहर बाहर भटकतां, मिलै न सच को सार।
हो अन्तरमुख मानखा, अपनी ओर निहार॥
बिन स्ववेदन उळझग्यो, मत मतांतरा मांय।
यो तो बुद्धिकि लोल है, सम्यक् दरसन नांय॥
स्ववेदन स्यूं जाणग्यो, जो जग को परपंच।
बीं की छुटग्यी भरमणा, राग रयो ना रंच॥
जदि भीतर भी देखियो, रह्यो सच्च स्यूं दूर।
झूठी कूड़ी कल्पना, करै नहीं दुख दूर॥
जद अंतर मँह सच्च को, दरसन आरंभ होय।
देखत देखत देखतां, पाप निवारण होय॥

मेसर्स गो गो गारमेंट्स
३१ –४२, भांगवाड़ी शॉपिंग आर्केड,
१ला माला, कालबादेवी रोड, मुंबई - ४००००२.
०२२- २०५०४१४
की मंगल कामनाओं सहित

'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक: राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३, दूरभाष : (०२५५३) ८४०८६, ८४०७६.
मुद्रण स्थान : अक्षर चित्र प्रिंटिंग प्रेस, ६९- बी रोड, सातपुर, नाशिक-४२२००७. **बुद्धवर्ष २५४४, श्रावण पूर्णिमा, १५ अगस्त, २०००**

वार्षिक शुल्क रु. २०/-, विदेश में US $ 10
आजीवन शुल्क रु. २५०/-, " US $ 100

'विपश्यना' रजि. नं. १९१५६/७१. Concessional rates of Postage under Regn. No. AR/NSM-46/2000, Licenced to post without Prepayment

Posting day- **Purnima of Every Month**
Posted at Igatpuri-422403, Dist. Nashik

If not deliverd please return to:-
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२४०३
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
दूरभाष : (०२५५३) ८४०७६
फैक्स : (०२५५३) ८४१७६
Website: www.vri.dhamma.org
E-mail: <dhamma@vsnl.com>